सन्मति पुष्पमाला द्वितिय पुष्प

त्याग मीमांसा.

लेखक,
श्रीयुत् धर्मरत्न पंडित दीपचंदजी वर्णी.
(नरसिंहपुर निवासी)

प्रकाशक,
श्रीयुत् कोठारी मणिलाल चुनीलाल.
साणोदा.

प्रथमवार १००० रक्षा बंधन, वीर संवत २४५४

मूल्य पोना आना प्रति चार रुपीआ सेंकडा

श्रीयुत भाईश्री पोपटलाल (खंभात)
,, शेठ जमनादास परभुदास (जहेर)
,, शेठ छोटालाल अमथालाल (कलोल)

की ओर से ७५० प्रति भेट.

अमदावाद—धी डायमंड ज्युबिलि प्रिन्टींग प्रेसमां.
परीख देवीदास छगनलाले छाप्युं.

प्रथम वक्तव्य.

सुहृद् बंधुओ ! प्रथम पुष्प भट्टारक मीमांसा आपको मिला होगा जिससे आपने ज्ञात किया होगा, कि पवित्र वीतराग मार्गमें वीतरागी निर्ग्रन्थ गुरुओंका स्थान सरागी परिग्रहधारी (जो न त्यागो मुनियोंमें और न गृही (नैष्ठिक-पाक्षिक) श्रावकोंकी गणनोंमें आते हैं) ऐसे व्यक्तियोंने कितनेक कालसे ले रखा है जिसके कारण पवित्र दिगम्बर वीतराग मार्ग लुप्त प्रायः हो चुका था, ऐसे समयमें उस सत्य मार्गके दिखाने वाले मुनि और उत्तम मध्यम व जघन्य (नैष्ठिक) श्रावकोंकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी, कि जो गृहत्यागी के रूपमें यत्र तत्र विहार करके अपने आदर्श चारित्र और हित मित प्रिय जिनागमानुसार उपदेश करके मुमुक्षु-जनों को मोहनींदसे जगाकर उन्हें मोक्षमार्गमें लगावें और अपना आत्महित करते हुए, साधर्मी सज्जनों तथा अन्य जीवोंको कल्याण मार्ग में लगाकर दिगम्बर शासन की सच्ची प्रभावना करें।

हर्ष है कि कुछ वर्षोंसे त्यागी ब्रह्मचारियोंके दर्शन होने होने लगे २–३ उदासीनाश्रम भी खुल गये, इतना ही नहीं किन्तु एलिक क्षुल्लक और मुनियोंके भी दर्शन प्राप्त हुए, यह बड़े सौभाग्यका चिन्ह था, और वास्तवमें धर्मप्रचार व प्रभावना का सर्वोत्तम द्वार यही त्याग मार्ग हो सक्ता है अन्य नहीं। परंतु खेदके साथ कहना पड़ता है कि इन वर्तमान

त्यागी संयमीजनों में कतिपय त्यागी संयमियोंके सिवाय शेषके आचरण जैनागमके विपरीत पाये जाते हैं, अर्थात इन को निरंतर लम्बी २ यात्रा करना यत्र तत्र से रुपयोंका चंदा करना, हर प्रकार श्रावकों पर दबाव डालना मन माने कुवचन बोलना, और स्वछंद विहार करना, अमुक २ पदका नाम धराकर ख्याति लाभ पूजादि करना कराना इत्यादि.

ज्ञान और वैराग्यका अंश भी नहीं दिखता जिन्हें शुद्ध लिखना वांचना तक नहीं आता, उत्तम प्रतिमाधारी होकर भी छहढाला या बालबोध ४ भागोंका ज्ञान नहीं रखते इत्यादि व्यवस्था देख हृदय विदीर्ण होता है, इसी लिये आज पुनः पाठकोंके करकमलोंमें यह द्वितिय पुष्प देकर आशा रखता हूं कि यह त्याग व संयम मार्ग निरपवाद रूपसे चलकर जिस प्रकार दिग० जैन शासनकी उन्नति कर प्रभावना करे ऐसा उपाय करे इन पुष्पोंको प्रगट करके लेखक का व मेरा यह आशय नहीं है कि व्यक्ति विशेषको खेद करावें, किन्तु केवळ पवित्र शासनके अपवाद दूर कर सची प्रभावना और आत्मोन्नति करें. मात्र इतना ही अभिप्राय है। विद्वज्जन इस पर विचार करें।

श्री दिगम्बर जैन मार्गानुरागी
मणिलाल चुनीलाल कोठारी.

सन्मार्गमें आते हुए अपवाद मिटाओ !

यह जानकर कि वर्तमान दुःषम काल में भी दिगम्बर जैन मुनियों का सद्भाव पाया जाता है, प्रायः सभी दिगम्बर जैन नरनारियों को हर्ष का पारावार नहीं रहता, और इस लिये जब उनको यह मालूम होता है कि अमुक स्थान (ग्राम नगरादि) में मुनि महाराज पधारे हैं तो वे मुमुक्षुजन बड़ी श्रद्धा व भक्ति के साथ अपने अनेकों आवश्यक गृह कार्यों को छोड़कर मुनि दर्शन के लिये उस नगरादि में जाते हैं, और वहां जाकर मुनिजनोंके आहारकी विधि लगाते हैं। और यदि भाग्यवश उनके यहां आहार हो गया तो वे अपने आप को कृतकृत्य मानते हैं, और अपने सम्पूर्ण कष्टों को जो मार्गादि कारणों से होते हैं भूल जाते हैं।

वास्तव में ऐसा होना भी चाहिये, क्यों कि जो कोई जिस धर्म का उपासक होता है, उसे उस धर्मके धारी तथा विशेष गुरुओंका दर्शन करके आनन्द होता ही है और यदि ऐसा नहीं होता तो, समझना चाहिये कि यातो उन उपासकों में श्रद्धा या भक्ति का अभाव है और इस लिये वे उस धर्मके उपासक अर्थात् जैन ही कह लोनके योग्य नहीं हैं।

अथवा वे व्यक्ति जिन्होंने गुरू स्वरुप दिगम्बर जैन मुद्रा धारण कर रक्खी है सो उस मार्ग की श्रद्धा और क्रिया विहीन या शिथिलाचारी हैं जिस लिये वे मुनि कहलाने योग्य नहीं है और उनके प्रति सच्चे मुमुक्षुओं अर्थात् जैनागम के सच्चे मार्मिक लोगों की श्रद्धा व भक्ति न हो कर उपेक्षा भाव हो जाता है।

तब फल यह होता है कि जनतामें निंदा स्तुति तथा दिनरात समालोचनात्मक चर्चा होने लगती है। अनेकों भोले या स्वार्थी जन इन रूप धारीजनों के पक्षमें और अनेकों विपक्षमें हो जाते हैं जिससे परस्पर कलह बढ जाती है। और उसके निमित्त ये ही संयमी नाम धारीही कहे जाते हैं। अथवा यह होता है कि "उजरऊ गाय के साथ कपिला गाय भी तृस्कृत की जाती है, अर्थात् सच्चे संयमी जनोंका भी सामान्य जनों में अपवाद व झूठी निंदा की जाती है। तात्पर्य यह कि दोनों प्रकार से धर्म और धर्मात्माओं का अपवाद होता है। जो कि केवल धर्मोन्नति में बाधक ही नहीं होता, किन्तु धर्ममार्गका घातक होता है।

ऐसी अवस्था में समाजके नेताओं अर्थात् श्रीमानों और जैन धर्मके सच्चे जानकार हितैपी जनों का कर्तव्य है

कि इस समय बड़ी चतुराई और गंभीरता से इस विषय पर विचार करके सन्मार्गमें आये हुए अपवादों को दूर करें। ताकि संयम मार्ग और संयमीजनों की वृद्धि हो, सच्चे संयमी निष्कंटक मार्गसे अपने आत्मधर्म (रत्नत्रय) का साधन व वृद्धि कर सकें और सर्व साधारण जैन जनता झूठे नामधारी या ठगोंके चंगुल से बचे तथा जिनशासनका वास्तविक प्रभाव सर्व साधारण जनोपर पड़े।

मैं जब चरणानुयोग के ग्रन्थों का स्वाध्याय करता हूं और फिर वर्तमानके अनेकों संयमी कहलाने वाले जनोंकी प्रवृत्ति को देखता हूं, तो बहुत विचारमें पड जाता हुं, और "किं कर्तव्य विमूढ" हो जाता हूं, यदि इनका विनय भक्ति नहीं करता तो लोक विरुद्ध कहा जाता हूं और वे भेषधारी व्यक्ति भी मुझसे रुष्ट हो जाते हैं। और यदि विनय करने का विचार करता हूं तो जैनागम विरुद्ध आचरण देखकर अंतरात्मा इस बात का स्वीकार नहीं करती कि आंखोंसे देखते हुए भी मक्खी खाई जाय। इस लिये कुछ बातें जिन के विषयमें भ्रम हो रहा है विद्वानों के समक्ष उपस्थित करता हूं आशा है कि विद्वान महाशय उनका ठीक २ खुलासा करके भ्रम निवारण करेंगे, और यदि संयमी जनों में से जिनकी

भूल प्रतीत होवे उसके सुधारने का भी पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

मैं जो प्रश्न आगे करूंगा उनसे मेरा अभिप्राय संयमी-जनोंके अपवाद या व्यक्ति विशेषके अपवादसे नहीं है, किन्तु जैनशासनकी अवहेलना व उपहास्य जो इन असमर्थ व्यक्तियोंसे हो रही है और संयम मार्ग कंटका कीर्ण हो रहा है। उससे मोहवश जो हृदयपर आघात होता है उसीके दूर करने के लिये लिख रहा हूं, यद्यपि मुनि श्री अनंतसागरजी के साथ मैंने अपने १ धर्मबन्धु के प्रश्नोंके अनुसार विचार किया था, और उन्होंने वही उत्तर दिया था, जैसा कि अनागार धर्मामृत तथा मूलाचारादि ग्रन्थोंसे मुझे ज्ञात हुआ था, इससे यद्यपि मेरा विश्वास और भी दृढ हो गया है, तथापि वर्तमानकी प्रवृति देखकर और मुमुक्षुजनोंके आग्रह व प्रश्नोंके वशसे पुनः विद्वानों द्वारा दिगम्बर जैन आर्षप्रणीत चारित्र ग्रन्थों के प्रमाण सहित उत्तर चाहता हूं, स्मरण रहे कि उत्तर लिखने वाले सज्जन अपनी मन कल्पित युक्तियां लगानेमें समय न खोवें, किन्तु मूलाचार, सागार धर्मामृत, अनगार धर्मामृत, भगवती आराधना रतन करंड श्रा० आदिग्रन्थोंके श्लोक व टीका परसे उन्हीं आचार्योंके वाक्योको उद्धृत करके उत्तर देनेका कष्ट उठावें,

ताकि जिनशासनका यथार्थ महात्म्य प्रगट होवे ॥

यह समय खोज और परीक्षाका है अतएव ऐसे समयमें अब भी यदि गोलमाल करके अंधेरेमें रखनेका दुःसाहस किया जायगा, तो संभव है कि हमारे बहुत से भाई सन्मार्ग से विचलित हो जावेंगे और इस लिये जो कुछ भी धर्मकी अवलेहना अवनति व अपवाद होगा उसका प्रायश्चित समाजके नेता विद्वानों और श्रीमानों पर होगा—

लगभग ४०० वर्षोंसे दिगम्बर जैन समाजमें गुरुओंके नाम पर बहु आरंभ परिग्रहधारी भट्टारक (नामनिक्षेप) पुजते आये हैं, संभव है किसी समय इनमेंसे कतिपय भट्टारकों ने कुछ मंदिरों व ग्रन्थ भंडारोंकी रक्षा अपने बुद्धिबलसे गृहस्थोंके द्वारा की होवे, जैसा कि हम अपने वृद्ध जनोंसे सुनते आये हैं। परंतु अभी १००–१२५ वर्षके इनके चरित्रोंसे विदित होता है कि इन्होंने सब प्रकारसे गृहस्थोंको अज्ञान अंधकार में रखकर केवल अपनी इंद्रियोंके विषयोंका ही पोषण विशेष रूपसे किया है। अपने पास नौकर चाकर पालकी नालकी घोड़ा गाड़ी आदि इतना परिग्रह बढ़ा रखा है कि गृहस्थ जनोंको इनके एक दिनके भोजन मात्र करने को कमसे कम २५–४०) रु. तक व्यय हो जाता है। और

इनका समय इसी चिंता व चर्चामें जाता है "कि किसी प्रकार धन आवे तो खर्च चले"। ये अपने को महाव्रती मानते हैं। परंतु अणुव्रतका भी अंश इनमें नहीं पाया जाता, जब इनका अत्याचार बहुत बढ़ गया तो समाज के विद्वान नेताओंने मिलकर इनका बहिष्कार कर दिया, और समाज व धर्मकी रक्षा की। अर्थात् जिन्होंने इनका आश्रय छोड़कर दि. जैनागमका आश्रय लिया और अपने नेत्रोंसे देखने लगे तब उनमें धर्माचरण व धर्मचर्चा रह गई, इनकी सहायतार्थ पंडितप्रवर टोडरमलजी, जैचंद्रजी, दौलतरामजी, सदासुखजी, बुलाकीदासजी, किसनसिंह, हेमराज पांडे आदि महानुभावोंने ग्रन्थोंका अनुवाद मूल व संस्कृतके अनुसार आनुपूर्वी सरल भाषामें कर दिया जिससे सर्व साधारण स्वयं पढ़कर कर्तव्या कर्तव्यका निर्णय कर सकें।

परंतु जिन लोगोंने निगुरा हो जानेके भयसे, या कि कहींये भट्टारक मंत्रादि द्वारा हमारा कुछ बिगाड़ न कर देवें, अथवा लोकलाज व दवाव आदि कारणोंसे इनकी सत्ता अपने ऊपर कायम रक्खी, वे प्रायः निरक्षर भट्टाचार्य ही रहे। अर्थात् उनकी यहां तक अवस्था आपहुंची कि वे सिवाय जिनप्रतिमाको केशर व फूल चढ़ाने व उपवासादि

करने और भट्टारकों को भावना कराने के सिवाय समस्त धर्मकार्योंको विशेष करके धर्म शास्त्रोंके स्वाध्याय और पूजाका अधिकार ही खो बैठे। इतना ही नहीं किन्तु वीतराग देवके सिवाय यक्षादि देवोंकी पूजा आराधना में भी लग गये, जिससे देवगुरु धर्मके स्वरूपसे भी अपरिचित हो, नाम मात्र के जैन रह गये। पश्चात् जब छापेका प्रारंभ हुआ तो लोगोंके हाथोंमें सरलता से ग्रन्थ आने लगें, और वे स्वयं पढ़कर तथा उपदेशकों के उपदेशादि सुनकर प्रतिबुद्ध होने लगे, परंतु संस्कारवश अब भी अनेक स्थानों में वे परिग्रह धारी भट्टारकजन पुजते जाते हैं।

जब कि एक ओर लोग इन भट्टारकोंके दवाव में पड़कर ऊब उठे थे कि गत ४–५ वर्षों में उत्तर दक्षिण व मध्य प्रांतोमें बहुत समयसे विलुप्त दिगम्बर जैन मुनिमार्गका प्रादु-र्भाव हुआ, जिसको देख सुनकर सभी धार्मिक जनताको अपार हर्ष हुआ, वे बड़े २ धर्मोन्नतिके स्वप्न देखने लगे, उनको प्रतीत होने लगा कि चतुर्थकाल आगया, इस लिये यहां तक उपमालंकार दिये जाने लगे कि ये (मुनि) महाराज तो भगवान आदिनाथ तुल्य हैं और इनको आहार दानदेने वाले सज्जन महाराज श्रेयांश तुल्य हैं इत्यादि।

परंतु जब इनकी प्रवृत्ति पर विशेष दृष्टि डाली जाने लगी जैसी कि परीक्षा प्रधानी जनोंका कर्तव्य है। तो उक्त आशाओं में निराशाकी झलक आने लगी और इतने थोड़े ही समयमें जनतामें इनके प्रतिकूल वातावरण फैलने लगे. जो निर्णय आगम से होना चाहिये, सो व्यक्ति विशेष की ओर लक्ष्य रखकर होने लगा, इस व्यवस्थाको देखकर यह भय होता है कि कहीं वह दुःखद समय न आवे कि भट्टारकों के समान इस पवित्र दिगम्बर जिन मुद्रा की भी अवहेलना हो जावे और इनके विरुद्ध भाषण व लेखजनता में आने लगें, इसी लिये यह लेख विद्वानों के सन्मुख समदृष्टि से रखा जाता है कि जिससे संयम मार्गमें आये हुए दोषोंका प्रारंभसे ही परिहार हो जाय, और सर्व साधारणका इस पूज्य भेषधारी संयमीजनों में आदरभाव हो जाय, ताकि पूज्य और पूजक दोनों ही सातिशय पुण्य लाभकर सद्गति पावें निम्न लिखित प्रश्न जो कि सर्व साधारण उठ रहे हैं वे ये हैं।

(१) मुनि, एल्लिक, क्षुल्लक और आर्यिका, ये उद्दिष्ट भोजन कर सक्ते हैं या नहीं ? यदि कर सक्ते हैं, तो किस ग्रन्थके आधारसे ? यदि नहीं कर सक्ते, तो जिनको उद्दिष्ट

आहार ही मिल रहा है, उनको मुनि एल्लिक क्षुल्लक व आर्यिका मानना या नहीं ? क्योंकि इस समय उक्त संयमी जहां विहार करते हैं, वहां उनही के लिये खास तौर से रसोईघर सुधारे जाते, चंदोवे बांधे जाते, घी दूध व फलादिक दूर से मंगाये जाते, पानी प्रासुक करके भोजन बनाया जाता है। वह भोजन उनके ही लिये बना है इसकी पहिचान यही है, कि भोजन बनाने वाले के ऐसा भी नियम नहीं होता कि वे कमसे कम अपने चौकों में भी शुद्ध भोजन बनाकर जीमते हों, इसके सिवाय प्रत्येक आहार देने वालेके यहां प्रायः सेव संतरा अंगूर दाड़िम आदि फल तथा पिस्ता द्राक्षादि मेवे चौकों में देखे जाते हैं। जो कि कतिपय श्रीमानों के सिवाय सर्व साधारण जनोंको प्राप्त नहीं होने है। वे भोले प्राणी पूछने पर सत्य कह भी देते हैं। कि श्री मुनिराजना माटे अमे अमुक स्थले जइने लाव्या हिये " आहार थइ जाय एटले हमारू भाग्य सफळ थयुं. "

(२) मुनि एल्लिक क्षुल्लक आर्यिका तथा दशमी नवमी प्रतिमाधारी श्रावक जिनके हिरण्यादि समस्त द्रव्यका त्याग होता है, ऐसी दशामें वे ऐसी सवारीमें जिसमें सैकड़ों रुपया किराये में देना पड़ते हैं, जैसे रेल व मोटर आदि में बैठ

सक्ते हैं या नहीं ? यदि बैठ सक्ते हैं, तो उनके लिये भाड़े के रुपया कहांसे आवं ? यदि श्रावक देवें तो श्रावकों से याचना व दीनता करना पड़ेगी या नहीं ! यदि भक्तिवश वे विना मांगे देवें, तो उस रुपयाको कौन सम्हाले ? टिकट आदि कौन रक्खे ? जहां द्रव्य देने वाला श्रावक न होवे या उसकी शक्ति इनके सेकन्ड क्लाश व इंटर क्लाश के टिकट लेकर देनेकी न होवे तो संयमी क्या करे ? यदि नौकर साथ रखे तो नौकर का वेतन कौन देगा ? और वह नौकर चेतन परिग्रह हुआ या नहीं ? यदि नहीं बैठ सक्के तो जो बैठते हैं, और सैकड़ों रुपया गृहस्थोंसे पास रहने वाले श्रावक के द्वारा मंगाकर व्यय करते हैं, नौकर पर अनुकूल सेवा में भूल हो जाने पर क्रोधादि दिखाते हैं, रेलकी गद्दियों व मोटरकी गद्दियों पर बैठते हैं, उनको उक्त पदवी धारक मानना चाहिये या नहीं ? और क्या रेल मोटर आदि सवारियों में बैठनेसे इनकी ईर्या समितिका पालन व षडावश्यकों की रक्षा हो सक्ती है ?

(३)कोई मुनि आदि उक्त पदवी धर भी अमुक संस्थाओं अथवा स्वनाम लिखित और संस्थापित संस्थाओंके लिये जोर देकर चंदा आदि द्रव्य भरा सक्ते हैं ? और क्या वे चिट्ठी

पत्री तार आदि लिखा सक्ते हैं ? क्या वे अमुक संस्थाको मैं अमुक संस्थामें मासिक वार्षिक या एक मुश्त द्रव्य देनेका वचन दे सक्ते हैं ? क्या वे किसी संस्था विशेष से अपना संबंध रख सक्ते हैं ? यदि रख सक्ते हैं तो क्या उसमें उनका ममत्व भाव न होगा ? यदि उक्त बातें उनकी चर्याके प्रतिकूल हैं। तो जो ऐसा करते हैं, वे उक्त पदवी धारी कहाये जा सक्ते हैं क्या ? और उनका सत्कार क्या उक्त पदोंके धारी सच्चे मुमुक्षों के समान होना चाहिये ?

(४) क्या किसी मुनि आदि पूज्य व्यक्तियोंके चरण चिन्ह उनके जीवन कालमेंही किसी संस्था या तीर्थ आदि स्थलोंपर उनके स्मारक रूप नामादि लिखकर स्थापित किये जा सक्ते हैं.

(५) क्या मुनियोंको आचार्यपद गृहस्थोंद्वारा दिया जा सक्ता है ? यदि हां तो किस ग्रन्थके आधारसे ? सप्रमाण लिखे।

(६) एकाविहारी कौन हो सक्ता है ? उसके लक्षण ग्रन्थों में क्या लिखे हैं ? इस समय भी एकाविहारी कोई हो सक्ता है ? और जो आगमकी आज्ञा सिवाय स्वेच्छासे ऐसा करें वह पूज्य रह सक्ता है ?

(७) मुनि मार्गमें चलते चलते बातें कर सक्ते हैं या नहीं? यदि करते होवें तो क्या प्रायश्चित्त के अधिकारी होंगे?

(८) मुनि गृहस्थोंकी सभामें जावे या नहीं?

(९) मुनिजनोंको उपदेश आदि करनेका कोई नियत समय होता है या कि हर समय वे सभाओंमें जाकर उपदेश कर सक्ते हैं?

(१०) आहारके जैसे ४६ दोष बतायें हैं उसी प्रकार वस्तिका के भी उद्गमादि दोष यत्याचार आदि ग्रन्थोंमें बताये हैं, तब क्या मुनिजनोंके निमित्त जो गुफा बनाइ जाय, या मकान साफ कराया जाय, या तम्बू लगाया जाय 'यह विचार करकि मुनि महाराज आ रहे हैं उनके लिये यह मकान साफ करावें या गुफा तम्बु आदि ठीक करा लेवें ताकि वे यहां ठहर जावेंगे' इत्यादि तो क्या मुनि आर्यिका व उत्तम श्रावक उनमें ठहर सक्ते हैं? यदि ठहरं तो उद्दिष्टादि दोष लगते हैं या नहीं? अथवा मुनि जहां ठहरें हों, और कोई भक्तजन उनके ऊपरसे तम्बू तान देवे तो वे वहीं बैठे रहं या अन्यत्र विहार कर जावें? यदि समय का प्रमाण करके बैठे होवें और फिर कोई ऊपर तम्बू तान देवे, तो उसे वे उपसर्ग समझें या नहीं? कतिपय दक्षिण प्रांतीय मुनि एल्लिक क्षुल्लक

आदि संयमी जनोंके साथ २ गृहीजन छोटे २ तम्बू ले चलते ह और जहां वे ठहरते हैं उनके लिये वहां शीतकालमें तान देते हैं और वे संयमी उनके भीतर रात्रि विताते हैं सो क्या ऐसी प्रवृत्ति आगम अनुकूल है? यदि नहीं तो वे संयमी उनमें क्यों रह जाते हैं और क्यों नहीं उपसर्ग समझकर उसका निषेध कर देते? मुनि आदि महाव्रती जिनके मात्र पीछी कमंडलु और १ शास्त्र, आर्यिकाजीको १ साला हाथ की साडिका अधिक, एल्लिकजीके १ कोपीन अधिक और क्षुल्लकजीके १ कोपीन व खंड वस्त्र अधिक होता है तथा साथराके लिये कहीं वस्तिकादि घास हो तो उनका सरोगा वस्थामें उपयोगमें लिया जा सक्ता है ऐसा ही ग्रन्थोंमें लिखा है सो यदि उनके साथ २ घास चटाइयां आदि चलें, ये ठीक है? क्या घासके साथरेके सिवाय कागजोंका कतरन भी साथरेके काम आसक्ता है!

(११) केशलोंच मूल गुणोंमें बताया है। और उसके निम्न लिखित हेतु आगम ग्रन्थोंमें कहे हैं—अर्थात्—

नैःसङ्ग्याऽयाचनाऽहिंसा दुःखाभ्यासायनाऽवत्।
हस्तेनोत्पाटनं श्मश्रु मूर्द्धजानां यतेर्मतम्॥

अनगार धर्मामृत अ. ९ श्लोक ९७ पृष्ट ६८३

तात्पर्य—निर्ग्रन्थता, अयाचना, अहिंसा, दुःखका अभ्यास, नम्रता आदि गुणोंकी वृद्धिके अर्थ दाढी मूछ और मस्तकके केशोंका अपने हाथसे उत्पाटन करना चाहिये॥ और भी कहा है—

जीवसन्मूर्छनादि परिहारार्थं, रागादि निराकरणार्थं, स्ववीर्यप्रकटनार्थं सर्वोत्कृष्ट तपश्चरणार्थं, लिंगादि गुणज्ञापनार्थं चेति ॥ तथा दैन्यवृत्ति याचन परिग्रह परिभवादि दोष परित्यागादिति ॥

मूलाचार पृ. ३६ पूर्वार्द्ध—

भावार्थ—सन्मूर्छनादि जीवकी हिंसा और रागादि भावोंके निराकरणार्थं तथा अपनी शक्ति प्रगट करने उत्तम तपश्चरण की सिद्धि और दिगम्बर जैन लिंगके गुणज्ञापन करनेके अर्थ अथवा दीनवृत्ति याचना और शस्त्रादि परिग्रहके परिहारार्थ अपने हाथ से केशोत्पाटन करना चाहिये इत्यादि गुण ग्रन्थोंमें वर्णन किये गये हैं। और यह सब प्रमाण हैं। अब विचार होता है कि यह केश लौच मुनि आदि उत्तम संयमीजनों को (जिनके लिये ग्रन्थोंमें आवश्यक विधान बताया गया है) एकांत स्थल (जनपद रहित) वनादिमें अपने मूलगुण की रक्षार्थं तथा उक्त गुणोंकी वृद्धि और दोषोंके

परिहारार्थ करना चाहिये या कि जनसमूहके बीचमें करना चाहिये, जैसा कि आजकल हो रहा है, (अर्थात् केशलौचके वृत्त बहुत समय पहिलेसे प्रगट कर दिये जाते हैं, तिथि वार नियुक्ति किये जाते हैं, वृत्त पत्रों व चिट्ठियों द्वारा सर्वत्र समाचार भेजे जाते है पश्चात् कहीं मंडपादि बनाकर उसमें ऊंचे आसन लगाये जाते हैं और जनसमुदायके मध्य नियुक्त तिथि व समयपर संयमीजन वहां आकर या तो अपने ही हाथों से या कि अन्य संयमी या गृहस्थजनोंके द्वारा केशलौच करते व कराते हैं। उस समय भस्मी (राख) का प्रयोग किया जाता है। किसी संयमीका केशलौच आधा पौन घंटे में ही हो जाता है और किसीके लोचमें ८-८ घंटे तक लगते हे, उस समय संयमी जनोंका उपदेश भी होता है और उस समय संयमीजनोंद्वारा उद्घाटित संस्थाओं या उनके नामसे स्थापित संस्थाओंके लिये चंदा भी होता है। इस समय नवीन पीछी व कमंडलु भी दिया जाता है, जो कि कहीं २ श्रावकजन बोली बोलकर (उछवनी करके) कुछ रकम संस्थाओंमें देते और उस रकमके बदले उक्त उपकर्ण लेकर संयमीजनोंको अर्पण करते हैं)

यदि पूर्वोक्त गुणोंके पालनार्थ करना है तो शास्त्रोक्त

(उत्तम दो माह मध्यम तीन माह और जघन्य चार माह) समयकी अवधिके भीतर किसी भी एकान्त स्थलमें बैठकर बाल स्वहस्तोंसे उपाडकर डाल देना चाहिये, इसके लिये जन समूह इकत्र करने की क्या आवश्यकता है ?

जिनने भी प्रथमानुयोग ग्रन्थोंका स्वाध्याय किया व सुने हैं कहीं भी किसी जगह लोंच सम्बन्धी ऐसी प्रथाका उल्लेख नहीं मिलता जैसी प्रथा इस समय चल रही है, तथा न कहीं चरणानुयोग ग्रन्थोंमें ही वर्तमान प्रथाकी विधि वर्णन की गई है ॥

इसके सिवाय मुनि श्री अनंतसागरजीने रतलाम नगरके बाव्हनसियांजीके मंदिरमें इसी शीतऋतुमें जब बिना किसी पर प्रगट किये ही (जब कि नगरनिवासी उनके लिये आहार देनेकीं भावनासे द्वारापेक्षण कर रहेथे) अपने आप एकान्तमें केशलोंच कर लिया, और उपवास धारण कर लिया तब नगरजनोंने जाकर देखा "कि स्वामी चर्य्यार्थ क्यों नही आये है" तो मालूम हुआ कि आज केश लोंच करनेके कारण उपवास धारण किया है इत्यादि। ये वृत्त जानकर मैं भी वहां गया और वर्तमान प्रथानुसार मैंने पूछा कि महाराजजी हमलोगों को तो केशलोंच की खबर भी नहीं मिली इत्यादि।

इसके उत्तरमें महाराजने कहा, कि खबर देनेकी क्या आवश्यकता थी ? कौन खबर देता और किस लिये ?

मैंने कहा—प्रभावनार्थ.

महाराज—केशलौंचतो प्रभावनार्थ नहीं होता है, उसके हेतुतो आचार ग्रन्थों में दीनता याचना परिग्रह परिहारादि (जैसा ऊपर कहागया है) बतायेहैं । यहतो हमारे मूलगुणों में से । है उसका पालन हमको करना चाहिये, यह कोई दिखानेका दृश्य नहीं है इत्यादि ।

आपके उत्तरसे समस्त श्रोताजनों को शांति व संतोष हुआ। आपने जबसे दिगम्बर व्रत धारण किया है। तबसे कभीभी जनसमूहके बीचमें केशलौंच नहीं किया । न कभी कहीं चंदा कराया। न अपने नामकी संस्था खुलवाई । न रात्रि को बोलते, न चलते, । न डेरा तम्बूमें रहते । हां यदि पहिले एक वक्त सागर जिलेमें तम्बू लगाया था, तो आप उसे उपसर्ग समजते थे, अपने साथ कोई नौकर आदि नहीं रखते, न रखने देते, जनसमूहके भीतर स्वयंतो नहीं जाते, परंतु उनके ही स्थान पर यदि जनसमूह इकत्र होजाय, और यदि कोई प्रश्न करे तो ग्रन्थके अनुसार यथायोग्य उत्तर देते हैं, तथा बहुत कम समय लोगों के निकट बिताते है। आपसे मैंने

यहभी पूछाथा कि मुनि चंदाके लिये कहें या नहीं और आचार्य पद मुनीको कौन दे सक्ता है, तथा मुनि किसीको अमुक द्रव्य मासिक या एक मुश्त देनेका वचन देवे या नहीं ? तब आपने कहा, कि न चंदा करावें न द्रव्य का वचन देवें. क्यों कि मुनिके पास कोई द्रव्यकोष या जायदाद नहीं है। और आचार्यपद तो आचार्य ही संघके किसी योग्य मुनिको स्वयं देते हैं। और कोई भी यह पद नहीं दे सक्ता गृहीजन तो सर्वथा इस कार्य को नहीं कर सक्ते हैं इत्यादि खुलासा किया था।

अब बड़ा संशय यह होता है कि ग्रन्थोंमें तो कुछ और लिखा है जैसा मुनिश्री अनंतसागरजी महाराज कहते हैं। और प्रवृर्ति कुछ औरही हो रही है और प्रवृत्ति में बहुत से पंडित तथा विद्वान, श्रीमान भी सम्मिलित हैं तब बेचारी साधारण जनताकी तो बात ही क्या ? वह तो आगेवानोंके साथ २ चलने वाली है। ऐसी अवस्थामें सत्य किसे समझना ? प्रवृत्तिको या आगमको (मुनिश्री अनंतसागरजीके कथनको)? यदि वर्तमान प्रवृत्ति ठीक है, तो आगम में सुधारा करना चाहिये और मुनिश्री अनंतसागर महाराज से निवेदन करना चाहिये, अथवा कि प्रवृत्ति को आगमानुकूल बनाना चाहिये ?

मेरी बुद्धिमें केशलौच एकांतमें ही होना चाहिये. क्योंकि जनसमूहमें करनेसे संयमीजनों के भावोंमें मानादि कषायोंका उद्भव होना संभव है। इसके सिवाय उनको प्रथमसे ही श्रावकों के वचन बद्ध होना पड़ता है, चिट्ठी छपाई जाती हैं भेजी जाती हैं मंडपादि बनाये जाते लोगोंके रहने को स्थान मकानादि स्वच्छ कराये जाते हैं। गेम आदि रोशनी की धूमधाम होती है, कहीं २ जीमनवार का भी आरंभ होता है पोलिस आदिकी भी सहायता लीजाती है, हजारों रुपया रेल तार छापा पोष्ट आदिमें जाता है, तथा इसके सिवाय मेलादिकोंमें जो २ बातें होती हैं वे सब होती है, तब इन सब कार्योंके आरंभादिका निमित्त कौन होगा? क्या यह सब मुनिजनोंके निमित्त नहीं होता है?

दक्षिण प्रांत में प्रायः मुनि होते आये हैं और उनको परम्परा अबभी चलती आरही है। परंतु एल्लिक पन्नालालजी महाराज के पहिले किसी भी मुनिके केशलौचके समाचार बांचने सुननेमें नहीं आये। महाराज अनंतकीर्तिजी मुनि (जिनका समाधि मरण मुरैनामें हुआ था) के भी केशलौचके समाचार प्रगट नहीं हुए। तब क्या वे केशलौचही नहीं करते थे? या समाचार प्रगट नहीं

करते थे ? यदि केशलौचही करते नहीं थे तवतो उनके एक मूलगुणही कम होगया और वे मुनि भी नहीं रहे। और यदि समाचार प्रगट नहीं करते थे, तो आजकल क्यों किये जाते हैं. यदि समयकी आवश्यक्ता कहेंगे ? तो समयकी आवश्कतानुसार तो और भी अनेकों वातें घुस पड़ेंगी, तब आगमका मार्गतो लोप ही हो जायगा। और आगमके प्रति-कूल मार्ग मोक्षमार्गका विरोधी होनेसे मान्य नहीं होसक्ताहै।

यदि सब बातोंको गौण करके केशलौचको प्रभावनाका ही प्रधानकारण माना जावे, तोभी नहीं बन सक्ता, इस समय मुनिजनोंके अतिरिक्त और भी अनेक त्यागी ब्रह्मचारी आदिभी अभ्यास रूपसे स्वहस्तोंसे अपने केशोत्पाटन करते देखे जाते हैं, तथा श्वेताम्बर साधु व स्थानकवासी साधुभी केशोत्पाटन करते हैं, कितने स्थानोंमें अजैनभाइयोंके मुखसे बिपरीत वातें भी सुनने में आती हैं—जैसे केशउखाड़ने में क्या रक्खा है ? आजकल ऐसे २ पाउडर और लोशन आते हैं कि जिनको लगातेही १० मिनटमें सब वाल सहज-में ही निकाले जासक्ते हैं इत्यादि। जव ऐसी व्यवस्था है तब भी क्या इसप्रकारसे केशलौच करना प्रभावनाका गुण हो सक्ता है !

क्या बहुतसे जैन नर नारियोंका इकत्र हो जानाही धर्मप्रभावना है ? या कि सर्व साधारण जनोंपर जैन धर्मका वास्तविक प्रभाव पड़जानेसे और उनको जैन धर्म स्वीकार कर लेनेसे होती है ?

यदि यह कहा जाय कि ऐसे अवसर पर अनेक मुमुक्षु-जन मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका आदिके व्रत ले लेते हैं, यहभी तो प्रभावना है तो हम यह कहेंगे, कि उक्त वृत संयमादि तो मुमुक्षुजन श्री मुनि महाराजके उपदेश, उनकी चर्या, व शांत मुद्रा से ही प्रभावित होकर ग्रहण कर सक्ते हैं व करते भी हैं। यदि केशलौचके समय ही व्रतादि लिये जाते हैं ऐसाही मानलिया जाय, तो अन्य समयोंमें किया हुवा मुनिजनोंका उपदेश मूल रहित ही मानना होगा। परंतु ऐसा नहीं होता है उनकी यथाजाति मुद्रा, उनकी आगमानुकूलचर्य्या, और हित मित प्रिय वचनोंमें किया गया उपदेशही मुमुक्षु जनोंको व्रत संयमादि सन्मार्गमें लगानेके लिये काफी है। और उनके उपदेश मात्रसे ही संस्थाओंका स्थापन रक्षण और वृद्धि हो सक्ती है, परंतु उनका अमुक संस्थाओंसे संबंध होना त्याग मार्ग सेविपरीत है, प्रभावनाका बाधक है।

मुनिश्री अनंतसागरजी ने एक बात यह भी कहीथी, कि मुनिजनोंका जिस गृहस्थके घर आहार होजावे, वे उसेभी किसी प्रकारके चंदे आदिके लिये दवाव न देवें. क्योंकि ऐसा करनेसे मुनि मार्गमें बाधा पड़ेगी. और गृहस्थजन आहार-दान करनेमें संकोच भावको प्राप्त होंगे क्योंकि वे सोचेंगे कि यदि पुण्योदयसे हमारे घर आहार होगया तो हम उनके बचन पालनार्थ द्रव्य कहांसे देंगे ? इत्यादि।

वास्तवमें बात सत्य है मुनिजनोंका आहार श्रीमान व गरीब सबकेयहां हो सक्ता है। परंतु जब चंदेकी बात चलेगी, तो गरीब तो पड़गाहेंगे ही नहीं और श्रीमान पड़गाहें भी तो लोकलाजके वश पड़कर, तब मुनिमार्गसे श्रद्धाभी उठ जावेगी और बड़ा अनर्थ हो जावेगा।

प्रसंगवश यहभी कहना आवश्यक है कि वर्तमान समयमें मुनिजनोंके उपदेश या लौंचक्रियाकी प्रभावनासे (जैसी मान्यता हो रही है) कितनेही भोले प्राणी मुनि एल्लिक क्षुल्लक ब्रह्मचारी आर्जिकादिके व्रत ले लेते हैं, जिससे संयमी संघकी वृद्धि व प्रभावनाका आभास मालूम होने लगता है। परंतु इसका परिणाम क्या होता है ? सो समाज से छिपा नहीं है। कितने तो व्रत लेकर पीछे भृष्ट होजाते हैं,

कितने त्यागी नाम धराकर मिष्टान्न भोजन और धनसंग्रह करना अपना ध्येय बना लेते हैं। कितने तो धनका व्यय देशपर्यटन आदिमें करते हैं, और कितने अपने भाईबन्धु पुत्र कलत्रादिको दिया करते हैं। इन त्यागीजनोंमें बहु भाग उन अपढ़जनोंका होता है जो कि अक्षर ज्ञान शून्य होते हैं वे प्रतिमा शब्दसे श्री जिनेन्द्रकी प्रतिमाहीको समझते हैं, न कि श्रावककी प्रतिमारूप संयमासंयम गुणस्थान सम्बन्धी चरणानुयोगको तरतम भावरूप क्रिया अर्थात् श्रावककी एकादश प्रतिमाएं।

सो जब नित्य पालनरूप प्रतिमाओं का स्वरूपही जो नहीं समझते वे बिचारे भोलेजीव, तत्त्वातत्त्व को क्या पहिचान सक्ते हैं? जिनको शुद्ध भाषा पाठ बांचते भी न बने वे सामायिक के साम्यभाव को क्या जानसक्ते है? तब इनकी दिनचर्य्या किस प्रकारके ध्यानमें पूरी होती है? सो सर्वज्ञजाने, किन्तु बाह्य क्रियाओं से समाज भी कुछ अनुमान कर सक्ती है। ऐसे त्यागीजनोंसे न तो समाज व धर्म कीही उन्नति होती है और न उन बेचारोंके आत्माका हितही होता है।

तब ऐसे प्राणियोंको व्रतादि देकर व्रत संयमका अपवाद करनाही कहाजायगा. क्योंकि कोई जीव जबतक कमसे कम सामान्य प्रकारसे भी धर्मका वास्तविक स्वरुप न जानले,

और जबतक उसे स्वयं संसारसे वैराग्यभाव न उत्पन्न होजावे, तबतक वे व्रती होनेके अधिकारी ही नही हो सक्ते हैं। इस लिये जिस किसीको भी व्रत दियाजाय तो पहिले उसे उसका यथार्थ स्वरूप समझा दिया जाय, उसका फल और उसके घात होनेसे पाप बंधादिके भेद समझा दिये जाय, तत्पश्चात उसकी रुचि देखकर तथा पात्रापात्रकी परीक्षा करके ही व्रत दिये जांय तो हो समाज, धर्म, और उन जीवोंका हित हो सकेगा अन्यथा नहीं.

इत्यादि बातें विचारणीय हैं।

(१२) किसी निमित्त कारणको पाकर कहीं रागादि परिणति न होजाय इसी कारणसे दिगम्बर जैन मुनि एलिक क्षुल्लक आदि संयमी ग्राम नगरादिसे दूर वन, कंदरा, बाहर गुफा, वृक्षोंकी कोटर, सूने मकान, छोड़े हुए आवास, नदीके तट, पहाडके शिखर, उपवनादिमें रहते हैं। और उनको भी चौमासे के सिवाय ५ रात्रियोंके भीतर बदलते रहते हैं। वे ही मुनि आचार्यकी आज्ञा मिलने पर एकाविहारी होते अथवा आचार्य सहित संघमें बिचरते हैं। ऐसा जैनागमका कथन है।

तब आजकल इसके विपरीत देखाजाता है कि मुनि आदि उत्तम संयमी गृहस्थों के संघमें हजारों मनुष्यों के साथ तीर्थयात्रार्थ विहार करते हैं। उनके अनुकूल अपना विहार

व मुकाम करते हैं बहुत जनोंसे उनका परिचय बढ़ता जाता है, वे सभाओंमें भी जाते हैं, अपने साथ गृहस्थों, तथा नौकर आदि (जिनको समाजसे अमुक वेतन दिया या दिलाया जाता है) रखते हैं, इत्यादि। क्या ऐसा होनेसे रागादि भावोंकी वृद्धि नहीं होती है ? क्या गृहस्थ संघमें मुनिधर्म निर्दोष पल सक्ता है ? क्या जनसमुदायमें रहनेसे ध्यान और अध्यन जोकि मुनीजनोंका मात्र कर्तव्य है, यथोचित रीत्या हुआ करता है ? जो तीर्थयात्राके संघोंमें गये हैं उन्हें विदित होगा कि पर्वतपर चढ़ते उतरते या मार्गमें चलते हुए भीड़ में मुनिजनोंके शरीरकी रक्षा कितनी कठिनता से की जातीथी, मैंने स्वयं तारंगाजीमें इसी चैत्र सुदी १५ को वरघोड़ा निकलनेके समय देखाथा कि जब श्रीमंदिरजीसे श्री-जीकीसवारी बेंड वाजा हाथी घोड़ों आदि जनसमूहके साथ निकलीथी, उस समय उस जुलूसमें श्रीयुत् शांतिसागरजी मुनिभी थे। तब यदि चार वालिंटियर्स मिलकर अपनी चार लकड़ियोंका घेरा बनाकर उनके बीचमें मुनि महाराजको नहीं ले गये होते, तो अवश्य ही नरनारी उनके शरीरपर गिर गये होते, इस लिये ऐसे स्थलोंमें जानेसे मुनिजनोंका अविनय होजानेका क्या लोगोंको दोष नहीं लगता होगा ? और मुनिजनोंकी ईर्य्या पथादि शोधनमें भी बाधा तो

नहीं आती होगी ? तब क्या ऐसे संघोंमें मुनिराजोंको जाना चाहिये ? चरणानुयोग और करणानुयोगोंके जानकार मुनिराजों व पंडितजनोंको विचारना चाहिये ।

(१३) मुनिजन मार्गमें किस वेगसे चल सक्ते है अर्थात् प्रति घंटे कितने मील और १ दिनमें कमसे कम या अधिकसे अधिक कितने मील आगम प्रमाणसे चलना चाहिये। ताकि ईर्य्यापथ समितिका पालन यथोचित रीत्या हो शके आजकल मेरे स्वयं अनुभवकी बात है, तथा अपने भाइयोंसे सुनताहूं, कि वे मुनिजनोंके साथ २ चलनेमें थक जाते हैं, अर्थात् गृहीजन भी इनके साथ उतने जल्दी नहीं चल सक्ते हैं। जितने जल्दी मुनिजन चलते हैं। ९–१० मीलभी मुनिजन चले जाते हैं ।

(१४) मुनि जनोंकी सामायिकादि षडावश्यकोंका काल कमसे कम कितना होना चाहिये ? क्योंकि हमने अनुभवी विद्वानोंसे सुनाहै कि मुनिजनोंकी सामायिकका काल उत्कृष्ट अर्थात् छह घड़ीका होता है । मध्यम व जघन्यकाल श्रावकोंके लिये कहा गया है । क्योंकि मुनिजनोंका मुख्य कर्तव्य ध्यान और ध्यानमें स्थिरता न रहनेके समय अध्यन येही दो कार्य है इस लिये उनका उत्कृष्ट कालही होना

चाहिये। परंतु आजकल जघन्य कालभी देखा जाता है। सो पंडितजन निर्णय करें।

(१५) मुनि, आर्यिका और एल्लिक श्रावक द्विजवर्णमेंसे अर्थात् जिनका द्वितीय जन्म संस्कारों द्वारा हुआहो, ही हो सकते हैं, उनमें भी जिनके कुल शुद्ध हों, वेही महाव्रतोंके अधिकारी होते हैं। नीति वाक्यामृत (सोमसेनाचार्यकृत) में लिखा है कि शूद्र छह प्रकारके होते हैं उनमेंसे(१) जिनमें स्त्रियों का पुनर्लग्न नहीं होता, वे सच्छूद्र कहाते हैं और (२) जिनमें ऐसा होता है वे असच्छूद्र कहाते हैं॥ इस से यह विदित होता है कि पुनर्लग्न जब कि सच्छूद्रों में भी नहीं हो सक्ता तो उच्च वर्णमें तो हो ही नहीं सक्ता। और यदि कोई करे तो उसकी गणना असच्छूद्रोंमें होना चाहिये। और इस लिये यदि कोई द्विज वर्ण भी पुनर्लग्न (स्त्रियोंका अर्थात विधवा विवाह या धरेजा) करते हैं तो वे भी असच्छूद्रों की गणना में आते हैं और शूद्रोंको महाव्रत तथा एल्लिक के व्रत लेनेका निषेध है सच्छूद्र भी क्षुल्लक तक का व्रत ले सक्ते है। और उसकी पहिचान लोहेका कमंडलु व भोजनका पात्र होता है। और असच्छूद्र केवल अणुव्रत (दूसरी प्रतिमा के व्रतों) का ही अधिकारी होता है। यह भी यहांपर ध्यानमें रखना जरूरी है कि किसी जातिमें पुनर्लग्न (विधवा

विवाह या धरेजा) होता है। और कोई ऐसा विशेष उस जातिमें होवे कि जिसमें दो चार पीढ़ी से ऐसा न हो, तो भी वह उस जाति का होने तथा उस जातिम रोटी व्यवहार होनेसे कदाऽपि शुद्ध जातीय नहीं कहा जा सक्ता है। और इस लिये वह मुनि धर्मका अधिकारी नहीं हो सक्ता। परंतु वर्तमान समयमें इसके विपरीत प्रवृत्ति देखी जाती है। मुनि ही नहीं, किन्तु मुनि नायक आचार्य तक ऐसी जातियों में उत्पन्न व्यक्ति होते हैं। तब उनको मुनि मानना चाहिये या नहीं? यदि उनको भी मुनि आचार्य ऐसा माना जायगा, तो वर्तमानके कतिपय (विधवा विवाह आदि चलाने वाले) सुधारकों को बड़ा बल मिलता है और आर्ष पद्धतिका लोप हो जाता है। इस लिये इस विषयमें भी आगमके अनुसार प्रमाण सहित खुलासा होना जरूरी है—

नोट—उक्त प्रश्न केवल सन्मार्गमें लगते हुए आक्षेपोंको दूर करने और आगमोक्त मार्गकी जानकारीके लिये ही लिखे गये हैं आशा है कि विद्वन्समाज इनका आर्षप्रणीत दिग॰ जैन आगमानुसार सप्रमाण खुलासा उत्तर सभ्य भाषा॰ लिखकर करेंगे। इत्यलम

श्रावण सुदी १५ — श्री वीराब्द २४५४

जिज्ञासु,
दीपचन्द वर्णी.